Volume-4, Issue-8, August-2015 • ISSN No 2277 - 8160

Research Paper Journalism

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में हाशिए पर साहित्य

Dr. Subodh Kumar सह-आचार्य एवं संयोजक, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विवि, कोटा

Pramod Kumar शोध छात्र, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विवि, कोटा

ABSTRACT

साहित्य और पत्रकारिता एक दूसरे के पूरक हैं। उन्नीस सौ नब्बे के दशक में शुरू हुए आर्थिक उदारीकरण के बाद जैसे-जैसे पत्रकारिता पर बाजार हावी होता गया वैसे-वैसे इस अटूट रिश्ते में दरार पैदा होती गयी। आज यह दरार इतनी चौड़ी हो गयी है कि हिंदी सहित अधिकतर भारतीय भाषाई पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यशून्यता की स्थिति पैदा हो गयी है। पत्रकारिता में जो नयी पीढ़ी आ रही है उसकी लेखन क्षमता, साहित्यिक समझ और अभिरुचि पर प्रश्न चिन्ह हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में आज जो रचनाएं हो रही हैं उनकी गुणवत्ता भी सवालों के घेरे में है। सोशल मीडिया एवं नयी सूचना तकनीक ने एक अलग चुनौती पैदा की है। लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि बदलते दौर में साहित्य को जीवित रखने तथा पोषित करने के लिए सोशल मीडिया एवं सूचना तकनीक बेहतर माध्यम हो सकते हैं। इसलिए पत्र-पत्रिकाओं के मुद्रित संस्करण में यदि स्थान की मर्यादा है तो वेब संस्करण में साहित्य को पर्याप्त स्थान दिया जाना चाहिए। कुछ पत्रों द्वारा इस दिशा में जो प्रयोग शुरू हुए है उन्हें और मजबूत करने की जरुरत है। इसके अलावा सोशल मीडिया में ब्लॉग आदि के माध्यम से सक्रिय नवोदित साहित्यकारों को प्रशिक्षण देकर उनके लेखन को सुधारने का प्रयास किया जाना चाहिए। यह प्रयास पत्र पत्रिकाओं द्वारा ही नहीं, बल्कि भारतीय भाषाई एवं साहित्यिक संगठनों द्वारा भी किया जाना चाहिए।

KEYWORDS : सोशल मीडिया, सूचना तकनीक, वेब

प्रस्तावना

भारत में साहित्य और पत्रकारिता की एक समृद्ध परम्परा है। हिन्दी ही नहीं प्रायः सभी भारतीय भाषायी पत्रों के संपादक व पत्रकार मूलतः साहित्यकार हुआ करते थे या फिर ऐसे लेखक हुआ करते थे जिनकी साहित्य में रुचि होती थी। समय के साथ पत्रकारिता में जो बदलाव हुए उससे साहित्य में भी बदलाव आया, किन्तु उसके प्रति अभिरुचि बनी रही। समाचारों का प्रभाव बढ़ने के बाद भी खासतौर से साप्ताहिक परिशिष्ट साहित्य परिशिष्ट ही होते थे। ये परिशिष्ट संपूर्ण परिवार यानि महिलाओं, बच्चों, बूढ़ों, युवाओं आदि के लिए कुछ न कुछ सामग्री परोसते थे। पहले ऐसे परिशिष्ट रविवार को प्रकाशित होते थे लेकिन बाद में पाठकों की अभिरुचि को देखते हुए शनिवार को भी प्रकाशित होने लगे। साहित्यप्रेमियों के लिए कभी-कभी वार्षिक अंक भी निकलते थे जो सही मायने में संग्रहणीय हुआ करते थे। किन्तु आज यह परिदृश्य पूरी तरह बदल गया है। वार्षिक अंक तो छोड़िए, साहित्य के लिए समर्पित 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'दिनमान', 'सारिका', 'पराग' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाएं बंद हो गयी हैं और पत्र-पत्रिकाओं से साहित्य गायब हो गया है। 'धर्मयुग' के बारे में माना जाता था कि ''जिस साहित्यकार की रचना धर्मयुग में प्रकाशित हो गयी वह रातोंरात स्टार लेखक बन जाता था'' (भारद्वाज महेश)। ''सबसे अधिक समस्या साहित्य की उन विधाओं के साथ हुई जो कभी स्तरीय पत्रिकाओं में छपा करती थीं। रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखाचित्र, कार्टून, यात्रा वृतांत, भेंटवार्ता, समीक्षा, ललित निबंध आदि कभी पत्र-पत्रिकाओं की शान होते थे, पर आज सभी दम तोड़ रहे हैं''। (सिंह गोविन्द 2012)

शोध प्रविधि

वर्तमान भाषाई पत्रकारिता पर यह आरोप है कि वह साहित्य की उपेक्षा कर रही है। इस आरोप की सत्यता जांचने के लिए शोधकर्ता ने राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से प्रकाशित प्रमुख हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों एवं कुछ पत्रिकाओं में साहित्य को दिये जाने वाले स्थान की पड़ताल की। जिन समाचार पत्रों की पडताल की गयी उनमें शामिल हैं ऑडिट ब्यूरो ऑफ़ सर्कुलेशन (ए.बी.सी.) की दिसम्बर 2014 की रिपोर्ट के अनुसार शीर्षतम स्थान वाले हिन्दी दैनिक पत्र 'दैनिक भास्कर', दूसरे स्थान पर स्थित 'दैनिक जागरण', तीसरा स्थान प्राप्त 'हिन्दुस्तान', चौथे स्थान वाले 'अमर उजाला' तथा पांचवें स्थान वाले 'राजस्थान पत्रिका' के अलावा 'नवभारत टाइम्स', 'पंजाब केसरी', 'राष्ट्रीय सहारा', 'जनसत्ता' और 'इंडिया टुडे' व कादंबिनी जैसी पत्रिकायें। इनके अप्रैल से जून 2015 तक के अंकों की पड़ताल की गयी। इसके अलावा हिन्दी समाचार पत्र-पत्रिकाओं में काम करने वाले पत्रकारों, वर्तमान संपादकों, पूर्व संपादकों, सेवानिवृत्त पत्रकारों व लेखकों से उनकी राय जानने का प्रयास किया गया। जिनसे प्रत्यक्ष मिलना संभव नहीं था उनसे दूरभाष पर बात की गयी।

हिन्दी समाचार पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य की वर्त्तमान स्थिति

अध्ययन से पता चलता है कि ज्यादातर पत्र सप्ताह में एक दिन रविवार को साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कहानी, पुस्तक समीक्षा आदि से संबंधित सामग्री प्रकाशित करते हैं। 'हिन्दुस्तान' और 'पंजाब केसरी' जैसे अखबारों ने ऐसी सामग्री छापना पूरी तरह बंद कर दिया है। 'पंजाब केसरी' का 'सृजन' नाम से प्रकाशित साप्ताहिक साहित्यिक परिशिष्ट एक समय बहुत लोकप्रिय था, लेकिन करीब दो साल पहले उसे बंद कर दिया गया है। पत्रिकाओं की बात करें तो 'इंडिया टुडे' जैसी पत्रिका ने भी साहित्य से जुड़ी सामग्री का प्रकाशन बंद कर दिया है। हालांकि 'जनसत्ता' आज भी सप्ताह में एक दिन रविवार को विभिन्न साहित्य विधाओं से जुडी सामग्री को सर्वाधिक स्थान देता है। अध्ययन के दौरान कुछ सुखद अपवाद भी ध्यान में आये। 'राष्ट्रधर्म' जैसी मासिक पत्रिकाएं आज भी साहित्य पर वर्ष में एक अंक अवश्य प्रकाशित करती हैं। किन्तु इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि 'राष्ट्रधर्म' जैसी पत्रिकाएं और 'जनसत्ता' जैसे दैनिक पत्र भले ही साहित्य की लौ को जलाए हुए हैं उनकी माली हालत अच्छी नहीं है। इसकी पड़ताल अलग से करने की जरूरत है। इसके अलावा बहुत से पत्रों में रेखाचित्रो व कार्टून का प्रयोग बंद कर दिया है। प्रतिदिन छपने वाले कार्टून अब साप्ताहिक छपने लगे हैं। कुछ ने तो उनका प्रकाशन बिलकुल बंद कर दिया है।

आगे बढ़ने से पहले प्रमुख हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों की साहित्यिक 'कवरेज' पर एक नजर:

- दैनिक भास्कर: शीर्षतम हिन्दी दैनिक पत्र 'दैनिक भास्कर' रविवार के दिन रंगीन परिशिष्ट 'रंसरंग' में एक पेज पर कहानी, कविता, 'किताब की बात' तथा 'यादगली' नाम से साहित्य से जुड़ी कुछ सामग्री प्रकाशित करता है। इसके अलावा बुधवार के दिन 'टेबलाइड' आकार में प्रकाशित आठ पृष्ठीय 'मधुरिमा' में भी दो पृष्ठ 'सृजन' व 'मनीषी' स्तंभों के तहत साहित्य की अलग-अलग विधाओं को समर्पित होते हैं। यह पत्र सप्ताह में औसतन 106 पृष्ठ प्रकाशित करता है, जिनमें से लगभग एक पृष्ठ ही साहित्य को दिया जाता है।

- दैनिक जागरण: 'दैनिक जागरण' सप्ताह में सामान्यतः 178 पृष्ठ छापता है, जिनमें एक पृष्ठ से भी कम स्थान रविवासरीय परिशिष्ट में साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कहानी, व्यंग्य, गीत, पुस्तक चर्चा तथा लघु कथा से जुड़ी सामग्री को दिया जाता है। अक्सर देखने में आया है कि कई बार इस पत्र के रविवासरीय अंक में 38-40 पृष्ठ तक होते हैं, लेकिन साहित्य को एक पेज से भी कम स्थान ही दिया जाता है।

- हिन्दुस्तान: प्रसार संख्या की दृष्टि से तीसरे स्थान पर विराजमान 'हिन्दुस्तान' अपने नियमित पृष्ठों में साहित्य से जुड़ी सामग्री किसी दिन भी प्रकाशित नहीं करता। सप्ताह में करीब 152 पृष्ठ प्रकाशित होते हैं, जिनमें चार अलग-अलग दिन छपने वाले परिशिष्ट भी शामिल हैं किन्तु किसी भी दिन साहित्य के लिए स्थान नहीं होता। इस समूह की मासिक पत्रिका 'कादम्बिनी' में पहले साहित्य पर काफी सामग्री प्रकाशित होती थी, लेकिन अब 84 पृष्ठ की इस पत्रिका में मुश्किल से 15 पृष्ठ ही साहित्य को दिए जाते हैं। इसमें एक पृष्ठ व्यंग्य के लिए, छह पृष्ठ कहानियों के लिए, तीन पृष्ठ कविताओं के लिए, तीन पृष्ठ किताबों के लिए, एक पृष्ठ 'हंसी दिल्लगी' के लिए तथा एक पृष्ठ 'शब्द' नाम से भाषा ज्ञान को दिया जाता है।

- अमर उजाला: 'अमर उजाला' की स्थिति भी साहित्य प्रकाशन में दूसरे पत्रों जैसी ही है। रविवार को एक पृष्ठ 'शब्दिता' नाम से प्रकाशित होता है, जिसमें कविता, किताब के बहाने, समास तथा प्लेटफार्म जैसे स्तंभों के तहत कुछ सामग्री प्रकाशित होती है। किन्तु यह पृष्ठ भी स्थायी नहीं है। बताया गया है कि जब भी अखबार के पास अधिक विज्ञापन आते हैं इस पृष्ठ को रोक लिया जाता है। यह पत्र सप्ताह में करीब 118 पृष्ठ प्रकाशित करता है, जिनमें एक पृष्ठ भी साहित्य को नहीं दिया जाता।

- राजस्थान पत्रिका: राजधानी दिल्ली में भले ही इस पत्र की पाठक संख्या बहुत अधिक न हो, लेकिन राजस्थान का यह प्रमुख हिन्दी दैनिक है। इसके दिल्ली संस्करण में रविवार के दिन रविवासरीय परिशिष्ट में कहानी, कविता व पुस्तक चर्चा प्रकाशित होती है। साथ ही बुधवार के दिन 'टेबलायड' आकार में आठ पृष्ठों का अलग परिशिष्ट प्रकाशित होता है जिसमें एक पृष्ठ 'साहित्य सुगंध' नाम से रहता है। उसमें एक कविता व एक कहानी प्रकाशित होती है। सप्ताह में यह पत्र करीब 104 पृष्ठ छापता है, जिनमें से करीब एक पृष्ठ की सामग्री ही साहित्य से जुड़ी होती है।

- नवभारत टाइम्स: 'नवभारत टाइम्स' रविवासरीय परिशिष्ट में करीब आधे पृष्ठ में 'अर्ज किया है'' स्तंभ के तहत सिर्फ कुछ 'शेर' प्रकाशित करता है। इसके अलावा 'नई किताब' नाम से कुछ पुस्तकों के बारे में परिचयात्मक पंक्तियां होती हैं। बच्चों की कहानी भी थोड़े से स्थान में समेट दी जाती है। जिस अखबार से कभी अज्ञेयजी व पंडित विद्यानिवास मिश्र जैसे उच्च कोटि के साहित्यकार जुड़े रहे उसमें आज साहित्य की यह हालत देखकर साहित्यप्रेमियों को बहुत कष्ट होता है। सप्ताह में यह पत्र करीब 146 पृष्ठ प्रकाशित करता हैं, जिनमें एक पृष्ठ से भी कम स्थान साहित्य को दिया जाता है।

- जनसत्ता: दिल्ली से प्रकाशित 'जनसत्ता' एकमात्र ऐसा हिन्दी दैनिक है जो हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं से जुड़ी सामग्री आज भी प्रकाशित करता है। सप्ताह में रविवार के दिन मूल पत्र में दो पृष्ठ पूरी तरह साहित्य से जुड़े होते हैं जिनमें मुख्य रूप से भाषा, कभी-कभार, पुस्तकायन, निनाद, अप्रासंगिक तथा मतांतर आदि स्तंभों के तहत सामग्री प्रकाशित की जाती है। इसके अतिरिक्त रविवासरीय परिशिष्ट में कविता, कहानी, देखी-सुनी, मुद्दा, बच्चों के लिए नन्हीं दुनिया तथा यात्रा स्तंभ के तहत सामग्री प्रकाशित की जाती है। यह पत्र सप्ताह में सामान्यतः 92 पृष्ठ छापता हैं जिनमें से मुख्यतः चार पृष्ठ साहित्य को समर्पित होते हैं। सप्ताह में सबसे कम पृष्ठ प्रकाशित करने वाला यह पत्र आज भी साहित्य के लिए सर्वाधिक स्थान समर्पित करता है। हालांकि भविष्य में यह स्थिति बनी रहेगी इसे लेकर संदेह है, क्योंकि वर्तमान संपादक ओम थानवी सेवानिवृत्त हो गये हैं और नये संपादक क्या नीति अपनायेंगे यह अभी किसी को पता नहीं है।

- राष्ट्रीय सहारा: 'राष्ट्रीय सहारा' भी रविवार के दिन साहित्य से जुड़ी सामग्री प्रकाशित करता है। मूल पत्र के एक पृष्ठ में प्रति सप्ताह संस्मरण, कलारंग, लय सुर ताल आदि स्तंभों के अलावा 'संडे उमंग' में कहानी, बोध कथा, नन्हीं दुनिया व रहस्य स्तंभों के तहत करीब एक पृष्ठ की सामग्री प्रकाशित की जाती है। 'जनसत्ता' के बाद यही एकमात्र हिन्दी दैनिक है जो साहित्य पर सबसे अधिक सामग्री प्रकाशित करता है। सप्ताह में यह पत्र सामान्यतः 108 पृष्ठ प्रकाशित करता है, जिनमें से करीब दो पृष्ठ साहित्यिक सामग्री को समर्पित होते हैं।

● पंजाब केसरी: साहित्य को लेकर 'पंजाब केसरी' और 'हिन्दुस्तान' एक जैसे ही हैं। करीब दो साल पहले तक इस पत्र में प्रति सप्ताह 'सृजन' नाम से साहित्य का एक पूरा पृष्ठ प्रकाशित होता था, जो अब बंद कर दिया गया है। यह पत्र सप्ताह में करीब 126 पृष्ठ प्रकाशित करता है, लेकिन साहित्य के लिए इसमें कोई स्थान नहीं रहता।

● इंडिया टुडे: हिन्दी की प्रमुख साप्ताहिक पत्रिका 'इंडिया टुडे' ने भी साहित्य को स्थान देना बंद कर दिया है। पत्रिका सप्ताह में 64 पृष्ठ प्रकाशित करती है लेकिन साहित्य के लिए नियमित रूप से एक पृष्ठ भी नहीं निकाला जाता।

साहित्य शून्यता के लिए जिम्मेदार कौन?

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों तथा साप्ताहिक पत्रिकाओं से साहित्य पूरी तरह गायब होने के कगार पर है। जिस देश में कभी पत्रकारिता और साहित्य एक दूसरे के पूरक थे वहां आज यह स्थिति क्यों पैदा हो गयी? क्या पाठक अब साहित्य पढ़ना नहीं चाहते? कहीं वर्तमान साहित्यकारों की कलम की धार ही तो कुंद नहीं हो गयी है? क्या यह मीडिया के बाजारीकरण का असर है अथवा तेजी से बदलती मीडिया तकनीक का प्रभाव? इस स्थिति के लिए किसे जिम्मेदार मानना चाहिए? इन प्रश्नों पर हिन्दी समाचार पत्रों के संपादकों तथा पत्रकारों की अलग-अलग राय है।

अमर उजाला, दैनिक भास्कर तथा कई प्रमुख हिन्दी दैनिक पत्रों का नेतृत्व कर चुके '**नेशनल दुनिया' के संपादक बलदेवभाई शर्मा** बेबाकी से स्वीकार करते हैं कि ''आज समाचार पत्रों में संपादक सिर्फ अलंकरण मात्र हैं उनकी कोई भूमिका नहीं बची है।'' वे कहते हैं ''अखबारों में लगातार सामाजिक सरोकार घट रहा है। अखबार में क्या छपना चाहिए और क्या नहीं इसका निर्णय शुद्ध रूप से व्यावसायिक हितों को ध्यान में रखकर किया जाता है। पहले यह निर्णय संपादक तथा संपादकीय विभाग लेता था, अब बाजार की ताकतें तय करती हैं। सामाजिक सरोकारों के कम होने से न केवल साहित्य, बल्कि आम आदमी से जुडी खबरों और मुद्दों को भी स्थान नहीं मिलता। इसका सबसे बडा नुकसान यह हुआ है कि लोगों में साहित्य के माध्यम से जो संवेदना का विकास होता था वह अवरुद्ध हुआ है।''

'**अमर उजाला' के संपादक निशीथ जोशी** इसके लिए वर्त्तमान साहित्यकारों को भी बराबर का दोषी मानते हैं। वे कहते हैं ''आज साहित्यकार गुटों और विचारधाराओं में बंट गये हैं। उनकी तरफ से साहित्य को बढ़ावा देने की ईमानदार कोशिश नहीं होती।'' वे कहते हैं, ''पहले पत्रकारिता में साहित्यक अभिरुचि के लोग इसलिए अधिक आते थे क्योंकि उस समय स्कूलों तथा महाविद्यालयों में कहीं न कहीं साहित्य प्रमुखता से पढ़ाया जाता था। इसके अलावा बैठकें, गोष्ठियां भी आयोजित होती थीं। अब वह औपचारिकता भर रह गए हैं। इसके अलावा विद्यार्थियों में पढ़ने की प्रवृत्ति भी कम हो गयी है। शायद ही कोई विद्यार्थी अपनी पाठ्यपुस्तक से अलग पुस्तकें पढ़ना पसंद करता है।''

कुछ लोग तर्क देते हैं कि साहित्य के प्रति अभिरुचि इसलिए कम हो रही है क्योंकि मनोरंजन के लिए अब टेलीविजन तथा मोबाइल फोन जैसे माध्यम आ गये हैं। '**भाषा' समाचार एजेंसी के ब्यूरो प्रमुख मनोहर सिंह** इस तर्क को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं ''साहित्य नजरंदाज करने का असली कारण बाजार का दबाव है। टेलीविजन चैनलों के माध्यम से जिस मनोरंजन की बात कही जाती है वह अपने साथ बड़ी मात्र में गंदगी लाया है। इसके अलावा साहित्य को मंडल-कमंडल की ओछी राजनीति ने भी नुकसान पहुँचाया है। साहित्य जरूरी है क्योंकि इसमें जीवन मूल्य तथा संस्कृति का रस है। इसलिए न्यू मीडिया के माध्यम से लोगों को साहित्य दिया जाना चाहिए।''

'**राष्ट्रीय सहारा' के ब्यूरो प्रमुख राकेश आर्य** भी बाजार के बढ़ते दबाव तथा संपादकों के गिरते स्तर को इसके लिए जिम्मेदार मानते हैं। वे कहते हैं, ''पत्रकार तो वही लिखेगा जो उसे कहा जाएगा। चूंकि आज मालिक का संवाद समाज और पाठकों की बजाए विज्ञापन एजेंसियों से अधिक होता है, इसलिए जिस माहौल में वे रहते हैं उसी के बारे में सोचते हैं।''

'**दैनिक जागरण' में सहयोगी संपादक प्रशांत मिश्र** का मानना है कि साहित्यिक कवरेज में कमी का असली कारण पाठकों की पसंद में आया बदलाव है। पाठक अब राजनीतिक खबरें अधिक पढ़ना चाहते हैं। वे कहते हैं ''सामग्री में बदलाव करने से पहले ज्यादातर अखबार पाठकों की राय जानने के लिए सर्वेक्षण करवाते हैं। सर्वे में जो राय आती है उसी के अनुसार सामग्री में बदलाव किया जाता है। आजकल पाठकों की तरफ से स्वास्थ्य, धर्म-कर्म, गैजेट्स आदि से जुड़ी सामग्री की मांग अधिक रहती है। ऐसे में जब साहित्य की मांग ही नहीं आती तो उसे प्रकाशित क्यों किया जाए? फिर भी अधिकतर पत्र सप्ताह में एक दिन साहित्य से जुड़ी कुछ न कुछ सामग्री प्रकाशित करते ही हैं। आजकल अखबारों में वैसे भी स्थान की मारामारी रहती है। ऐसे में पाठकों की इच्छा को वरीयता देना मजबूरी है। यदि आने वाले दिनों में पाठकों की पसंद में परिवर्तन आता है और वे साहित्य के प्रति रुचि प्रदर्शित करते हैं तो अखबारों को साहित्य के लिए स्थान निकालना ही पड़ेगा।''

'**जनसत्ता' के ब्यूरो प्रमुख मनोज मिश्र** पाठकों की घटती रूचि के तर्क से सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं ''बदलते दौर में लोग फटाफट खबरें जरूर पढ़ना चाहते हैं, लेकिन यह तर्क बिल्कुल गलत है कि पाठक साहित्य पढ़ना नहीं चाहते। 'जनसत्ता' में प्रकाशित साहित्य सामग्री को पाठकों की तरफ से बहुत अच्छा प्रतिसाद मिलता है। साहित्य न छापने का ठीकरा पाठकों के सिर फोडना गलत है।''

'**पांचजन्य' के संपादक हितेश शंकर**''साहित्य के पन्नों पर बैठकर मठाधीशी करने वाले साहित्यकारों'' को इसके लिए जिम्मेदार मानते हैं। वे कहते हैं, ''आज के साहित्यकार जो घटिया सामग्री पाठकों के समक्ष परोसते हैं उससे पाठक छिटकते हैं। ऐसे में जब संसाधनों की मितव्ययिता का प्रश्न आता है तो पहली कुल्हाड़ी साहित्य के पन्नों पर ही चलती है। साहित्य समय ही नहीं, रुचि और गहरायी भी मांगता है जो समय की मारामारी में अब किसी के पास नहीं बचा है। छंदमुक्त कविता ने भले ही आलोचकों और मठाधीशों को जोड़ा हो लेकिन पाठकों को तोड़ा है। इसका झटका भी साहित्य झेल रहा है। बढ़िया 'ग्लेज्ड' कागज पर घटिया कविताओं की किताबें आजकल बहुत छप रही हैं। पाठकों तक स्तरीय साहित्य पहुँचाना हमारी जिम्मेदारी है लेकिन घटिया माल की छंटायी पर समय बर्बाद करना बहुत बडा सिरदर्द है।''

तीस साल से प्रतिवर्ष साहित्य विशेषांक प्रकाशित करने वाले **'राष्ट्रधर्म' के संपादक आनन्द मिश्र 'अभय'** कहते हैं कि ''यदि साहित्य खत्म होगा तो मानसिकता विकृत होगी और हम अपनी जड़ों से कट जाएंगे। यदि पाठकों में साहित्य को लेकर अभिरुचि कम होती दिखे तो साहित्य को इतना रोचक बनाइए कि वे आनन्दपूर्वक उसे पढें।''

स्वभाव से कवि, गीतकार और '**दैनिक जागरण' के मुम्बई ब्यूरो प्रमुख ओमप्रकाश तिवारी** भी संपादक की भूमिका पर प्रश्न खडा करते हैं। वे कहते हैं ''पहले पत्र अथवा पत्रिका में संपादक सर्वेसर्वा होता था लेकिन आज वह एक अन्य मैनेजर से अधिक नहीं रह गया है। वैसे तो अधिकतर अखबारों में मालिक ही संपादक होता है लेकिन जहां कहीं अभी भी संपादक अलग से नियुक्त होता है वहां उनकी भूमिका एक मैनेजर जैसी ही है। वे प्रबंधन की नजर से देखते और सोचते हैं। पाठक अभी भी साहित्य पढ़ना चाहते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो सोशल मीडिया में साहित्य पर चर्चा तथा उसका प्रकाशन इतनी बडी मात्रा में नहीं होता। वास्तव में मीडिया पर दिनोंदिन हावी होती व्यावसायिक मानसिकता ने साहित्य के लिए स्थान छोड़ा ही नहीं है।''

जीवन के छह दशक पत्रकारिता को समर्पित कर चुके '**नवभारत टाइम्स' के पूर्व संपादक डा नन्दकिशोर त्रिखा** समाचार पत्र प्रकाशन समूहों के मालिकों की नयी पीढ़ी की शुद्ध व्यावसायिक मानसिकता को साहित्य की घटती कवरेज के लिए जिम्मेदार मानते हैं। वे कहते हैं, ''पत्रकारिता में बहुत बदलाव हुए और साहित्य भी बदला लेकिन पाठकों की अभिरुचि बनी रही। किन्तु आज वह अभिरुचि कहीं न कहीं प्रभावित हुई है। यह सच है कि साहित्य विज्ञापन बाजार को आकर्षित नहीं कर पाया और जो भी पत्र अथवा पत्रिकाएं घाटे में आयीं उन्हें बंद कर दिया गया। एक समय टाइम्स समूह की साहित्यिक पत्रिकाओं की बडी प्रतिष्ठा थी। उनमें धर्मयुग, पराग, दिनमान, सारिका का नाम प्रमुख था। हिन्दी के अलावा दूसरी भाषाओं में भी अनेक पत्रिकाएं साहित्य को समर्पित थीं। जब तक उन प्रकाशन समूहों के मालिकों की पुरानी पीढ़ी रही तब तक सब ठीक रहा, लेकिन नयी पीढ़ी ने आते ही सबसे पहले इन पत्रिकाओं को बंद कर दिया। टाइम्स समूह के मालिक शान्तिप्रसाद जैन की पत्नी श्रीमती रमा जैन साहित्य में बहुत रुचि रखती थीं। उन्होंने हिन्दी ही नहीं दूसरी भारतीय भाषाओं में भी अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित करनी शुरू कीं। लेकिन जैसे ही इन प्रकाशन समूहों की कमान नयी पीढ़ी के हाथ में आई उन्होंने उस पर आरी चला दी। इन्होंने पत्रकारिता को बाजार की चीज़ बना दिया है। साहित्य की वर्तमान दुर्दशा के और भी कारण हैं। प्रतिभाशाली युवा द्वारा कला विषयों में रुचि नहीं लेते। यदि कला विषयों में प्रतिभाशाली विद्यार्थी नहीं आएंगे तो साहित्य कहां से विकसित होगा?''

'**इंडिया टुडे' हिंदी के पूर्व संपादक जगदीश उपासने** पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य के सिमटते स्थान का प्रमुख कारण नयी सूचना तकनीक को मानते हैं। वे कहते हैं ''साहित्य के पाठक दो कारणों से कम हुए हैं। पहला कारण है आजकल मुद्रित पुस्तक खरीदकर पढ़ने का चलन कम हो गया है। आधुनिक युवा ऑनलाइन अधिक पढ़ते हैं। उन्हें कोई पुस्तक पढ़नी होती है तो वे पहले उसकी ऑनलाइन समीक्षा पढते हैं और यदि पसंद आती है तो खरीद लेते हैं। आजकल 'किंडल' जैसे नये सूचना तकनीक उपकरण आ जाने से किताब खरीदने की जरूरत बची ही नहीं है। इसके माध्यम से कम पैसे में अधिक किताबें 'डाउनलोड' की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त इंटरनेट पर दुनियाभर का साहित्य नि:शुल्क मौजूद है। जिसे जितना चाहिए उतना वहां से निकाल ले लेता है। ऐसी स्थिति में यदि वही सामग्री अखबार में भी छापी जाए तो उसे पाठक नहीं मिलते। दूसरा कारण यह है कि हिन्दी में जो साहित्य लिखा जा रहा है वह कालबाह्य हो गया है। लेखक अपनी ही दुनिया में खोये रहते हैं और उनका हकीकत की दुनिया से जुड़ाव नहीं होता। अखबार के कार्यालयों में समीक्षा के लिए जो किताबें पहुंचती हैं उनमें अधिकतर स्तरहीन होती हैं। हिन्दी में जो अच्छे लेखक हैं उनकी मीडिया तक पहुंच नहीं है। एक और कारण है। सम्पादकीय विभाग में काम करने वाले ज्यादातर लोग साहित्य से अंजान हैं। क्योंकि उन्होंने स्कूल व कॉलेज स्तर पर साहित्य पढ़ा ही नहीं होता। महज पाठ्यपुस्तकें पढ़कर डिग्री हासिल करने वाले लोगों की साहित्यिक पृष्ठभूमि शून्य होती है।''

राष्ट्रीय सहारा, अमर उजाला, हिन्दुस्थान समाचार जैसे अनेक पत्रों व न्यूज एजेंसी में प्रमुख पदों पर काम कर चुके '**दैनिक जागरण' के पूर्व सहयोगी संपादक डा रवीन्द्र अग्रवाल** कहते हैं, ''पहले अधिकतर संपादक तथा उनके सहयोगी साहित्यकार हुआ करते थे लेकिन आज ऐसा कहीं दिखायी नहीं देता। नवभारत टाइम्स में अज्ञेयजी धर्मयुग में धर्मवीर भारती, कादम्बिनी में कन्हैयालाल नन्दन, जनसत्ता में प्रभाष जोशी तथा दूसरे अखबारों में राजेन्द्र माथुर, कमलेश्वरजी, मृणाल पांडे तथा और भी पीछे जाएं तो विष्णु हरि पराडकर, मालवीयजी, रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी जैसी साहित्यिक हस्तियां अब किसी अखबार में नहीं हैं। अब तो संपादक की गरिमा ही समाप्त हो गयी है। मालिक की व्यावसायिक मानसिकता को सही ठहराने के लिए पाठकों की कम होती अभिरुचि का तर्क नहीं दिया जा सकता। पाठक तो 'जापानी तेल' के विज्ञापन और नग्न तस्वीरें छापने से भी मना करते हैं। लेकिन कितने अखबारों ने ऐसी गंदगी को छापना बंद किया है? हकीकत यह है कि आजकल अखबार में मालिक की अभिरुचि ही परिलक्षित होती है। पाठकों की अभिरूचि तो एक ढकोसला है।''

'**जनसत्ता' में वरिष्ठ सहायक संपादक रहे जवाहरलाल कौल** कहते हैं ''साहित्य में जो लचीलापन आना चाहिए था वह समय के साथ नहीं आया। केवल भावातिरेक पर्याप्त नहीं है, विषय की गहनता भी चाहिए। आज जो साहित्य लिखा जाता है वह समकालीन ज्ञान के स्तर का नहीं है। इसलिए वह अभिरुचि, प्रभाव तथा आकर्षण निर्माण नहीं कर पाता।''

सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली के प्रबंध निदेशक महेश भारद्वाज जवाहरलाल कौल का समर्थन करते प्रतीत होते हैं, ''एक प्रकाशक एवं साहित्य के सुधी पाठक के रूप में मुझे बहुत से लेखकों की पांडुलिपियों को पढ़ने का मौका मिलता है। मेरे देखने में आ रहा है कि आज के लेखक बदलते भारतीय समाज की नब्ज को समझने में असफल हैं। उनकी रचनाओं में वर्तमान पीढ़ी के बदलते सरोकारों, सोच व रहन-सहन का 'रिफ्लेक्शन' नहीं होता। यही कारण है कि नयी पीढ़ी स्वयं को साहित्य से जुड़ा हुआ महसूस नहीं करती।''

शोध परिणाम

मुख्यधारा की मीडिया में काम कर रहे अथवा प्रमुख पदों पर आसीन रहे पत्रकारों, लेखकों तथा संपादकों की उपरोक्त राय से कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। आज न तो साहित्यिक अभिरुचि वाले संपादक हैं और न ही पाठकों को बांधे रखने वाला साहित्य। पत्र-पत्रिकाओं के मालिकों पर हावी होती व्यावसायिक मानसिकता तथा बाजार के बढ़ते दबाव के कारण समाचार तथा विज्ञापन का अनुपात अब कोई मायने नहीं रखता। विज्ञापन मिलें तो संपादक मुखपृष्ठ पर भी खबर से पहले विज्ञापन छापने के लिए सहर्ष तैयार रहते हैं। आज संपादक की प्राथमिकता खबर, लेख अथवा दूसरी सामग्री नहीं, विज्ञापन रहता है। ऐसे में साहित्य के लिए स्थान बचता ही नहीं। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आजकल शिक्षा संस्थान विद्यार्थियों में साहित्यिक अभिरुचि निर्माण करने में सफल नहीं हो रहे हैं। जगदीश उपासने कहते हैं, ''पत्रकारिता में आज जो युवा आ रहे हैं उन्हें पत्रकारिता के प्रथम पाठ यानि लेखन का ही पता नहीं होता। यदि साहित्य रचना ही नहीं आती तो फिर साहित्य से कैसे प्रेम होगा?''

समाधान हेतु सुझाव

पत्र-पत्रिकाओं में पैदा होती साहित्य शून्यता से हिन्दी पत्रकार तथा संपादक विचलित अवश्य हैं लेकिन उनका मानना है कि साहित्य समाप्त नहीं हो सकता। सूचना तकनीक के बदलते दौर में साहित्य भले ही पत्र-पत्रिकाओं

में पर्याप्त मात्रा में न दिखायी दे लेकिन सोशल मीडिया में उसने अपनी जगह बना ली है। **उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय में पत्रकारिता विभाग के प्रमुख डा. गोविन्द सिंह बिष्ट** का मानना है कि साहित्य मर नहीं सकता। वे कहते हैं ''आज सोशल मीडिया में ब्लॉग्स, फेसबुक, व्हाट्स एप, हाइक जैसे माध्यमों पर साहित्य की सभी विधाओं में भरपूर सामग्री उपलब्ध है। यह सच है कि इस समय वहां जो साहित्यिक सामग्री परोसी जा रही है उसमें 80 प्रतिशत से अधिक कचरा है। लेकिन वर्तमान पत्रकारों तथा साहित्य प्रेमियों के समक्ष असली चुनौती यही है कि वे इस कचरे को साफ करके कैसे इसमें से ही स्वस्थ साहित्य का निर्माण करें। सोशल मीडिया में सक्रिय प्रतिभाशाली रचनाकारों को ढूंढकर उन्हें प्रशिक्षित किया जाए और साहित्य की सभी विधाओं को पाठकों के बीच नये माध्यम से जिंदा रखा जाए। साहित्य को सिर्फ इसलिए जीवित नहीं रखना है कि यह भारतीय भाषाओं की समृद्ध परम्परा का हिस्सा है। बल्कि इसलिए जिंदा रखना है क्योंकि यह स्वस्थ समाज के लिए परम आवश्यक है।'' जगदीश उपासने तथा ओमप्रकाश तिवारी भी सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्य प्रसार को बढ़ावा देने के पक्षधर हैं। वे कहते हैं कि यदि मुद्रित संस्करण में साहित्य को स्थान नहीं देना मजबूरी बन गया है तो वेब संस्करण में इसे भरपूर स्थान देना चाहिए?

पिछले दो सौ साल में पत्रकारिता और भारतीय भाषायी साहित्य ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। लेकिन हर परीक्षा में वे और भी निखरकर सामने आए हैं। सूचना तकनीक की धार आने वाले दिनों में और तेज होने वाली है। इसलिए क्यों न इसी धार पर सवार होकर साहित्य व भारतीय भाषायी पत्रकारिता को नयी उंचाइयों पर ले जाया जाए? आज की युवा पीढ़ी यदि सूचना तकनीक के माध्यम से पढ़ना चाहती है तो उसे उसी तकनीक से स्वस्थ साहित्य उन्हें परोसा जाए। भारतीय भाषाई पत्र और पत्रिकाएं यदि अपने मुद्रित संस्करण में साहित्य को स्थान नहीं दे सकते तो अपने वेब संस्करण में तो स्थान अवश्य दें। 'अमर उजाला' जैसे कुछ पत्रों ने यह प्रयोग शुरू किया है, लेकिन इस दिशा में अभी बहुत काम किये जाने की जरुरत है। सभी पत्र और पत्रिकाओं को यह शुरू करना चाहिए। समय और संसाधनों की मर्यादा के कारण इस विषय पर उतना काम नहीं हो पाया जितना अपेक्षित है। इसलिए इस पर बहुत काम किया जा सकता है। सरकार डिजिटल इंडिया अभियान के तहत इंटरनेट की उपलब्धता को और भी बेहतर बनाने जा रही है उससे आने वाले एक-दो वर्ष में इंटरनेट की पहुँच गांव-गांव तक होने की संभावना है। एयरटेल ने ४जी इन्टरनेट शुरू कर दिया है। आज जब देश में 100 करोड़ से अधिक लोगों के पास मोबाइल फोन हैं तो इसका फायदा उठाते हुए नयी तकनीक के माध्यम से साहित्य को समृद्ध करने के प्रयास किये जाने की जरूरत है। पत्रकारिता बहुत बडी शक्ति है जिसके जनक और पोषक पत्रकार होते हैं। यदि इसमें साहित्य का अनुपातीय समावेश हो तो व्यावहारिकता के साथ-साथ सहिष्णुता में भी वृद्धि होती है और भाषा भी परिष्कृत होती है। चूंकि हमारे यहां साहित्य और संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी हैं इसलिए साहित्य का पोषण जरूरी है।

REFERENCES

भारद्वाज, महेश.स्रोतः https://books.google.co.in/books?id=RMjiCQAAQBAJ&printsec =frontcover&source=gbs_ge_summary_r&cad=0#v=onepage&q&f=-false | सिंह, गोविन्द. (2012) स्रोतः http://www.abhivyakti-hindi.org/parikrama/delhi/2012/05_21_12.htm | http://www.auditbureau.org/files/Details%20of%20language%20wise%20most%20circulated%20dailies%20for%20the%20audit%20period%20July%20Dec%202014.pdf | राष्ट्रधर्म, लखनऊ, जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 10 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 10 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 11 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 12 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 13 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 14 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 14 जुलाई, 2015 | दूरभाष पर वार्ता, 15 जुलाई, 2015 | दूरभाष पर वार्ता, 15 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 16 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 16 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, नई दिल्ली 16 जुलाई, 2015 | साक्षात्कार, 16 जुलाई, 2015 | भारद्वाज, महेश.स्रोतः https://books.google.co.in/books?id=RMjiCQAAQBAJ&printsec=frontcover& source=gbs_ge_summary_r&cad=0#v=onepage&q&f=false | साक्षात्कार, 16 जुलाई, 2015 | दूरभाष पर वार्ता, 20 जुलाई, 2015 | तिवारी, अरुण. साहित्यिक पत्रकारिता का परिदृश्य, मेरठ, प्रेरणा प्रकाशन. स्रोतः https://books.google.co.in/ | books?id=RMjiCQAAQBAJ&printsec=frontcover&source=gbs_ge_summary_r&cad=0#v=onepage&q&f=-false) |